।। णमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स ।।
।। आयओ गुरुबहुमाणो ।।

प्रयाग

सद्गुणों का त्रिवेणी संगम

प्रियम्

अहो श्रुतम्
शा. बाबुलाल सरेमलजी
सिद्धाचल बंग्लोझ, हीरा जैन सोसायटी,
साबरमती, अमदावाद – 380005. मो. 9426585904
ahoshrut.bs@gmail.com
भाद्रपद वि. २०७६

⁕ पावन तीर्थ ⁕

गंगा, यमुना और सरस्वती जैसें
जिनशासन के ३ सद्गुण
जहा त्रिवेणी संगम के
पावन तीर्थ का सृजन कर रहे है
उसी का नाम
प्रयाग ।
यानि **प्रकृष्ट याग**
यानि उत्कृष्ट पूजा ।
इससे बड़ा अपनी आत्मा का सत्कार..
अपनी आत्मा का पूजन
हो ही नहीं सकता ।
शायद इसे देखकर ऐसा लगेगा
कि १ सद्गुण रह गया है,
पर ध्यान से अवलोकन करोगे,
तो प्रतीत होगा
कि वास्तव में उसका भी अंतर्भाव
हो ही गया है ।
पधारें,
इस पुण्य-प्रयाग में निमग्न हो जायें,
तैरने का इसके अतिरिक्त
और कोइ उपाय नहीं है ।

⁕

INDEX

No.	Suject	Page
१.	सम्यग्दर्शन	३
२.	सम्यक् चारित्र	७
३.	तपः समाधि	११

❊ सम्यग्दर्शन ❊

क्याँ है सम्यग्दर्शन ?
इस विषय में पू. हरिभद्रसूरि महाराजा
पंचवस्तुक ग्रंथ में कहते है –
सम्मं च मोक्खबीयं
सम्यग्दर्शन यानि मोक्ष का बीज ।
सम्यग्दर्शन का ही उत्तरोत्तर विकास
मोक्ष में परिणत होता है
जिस तरह
बीज का ही उत्तरोत्तर विकास
फल में परिणत होता है ।
सम्यग्दर्शन यानि मोक्षयात्रा में पहला कदम ।
सम्यग्दर्शन यानि मोक्षयात्रा की A B C D
सम्यदर्शन यानि आत्मकल्याण
का पहला चरण ।
१४४४ ग्रंथ रचयिता पूज्य हरिभद्रसूरि महाराजा से पूछा गया ।
यह तो फल की बात हुई,
पर बीज का स्वरूप क्याँ है ?
I mean,
सम्यग्दर्शन स्वयं क्याँ होता है ?
उसका स्वरूप क्याँ होता है ?
पू. हरिभद्रसूरि महाराजा जवाब देते है –
तं पुण भूयत्थसद्दहणरूवं ।
सम्यग्दर्शन का स्वरूप है तत्त्वार्थश्रद्धान ।
तत्त्वार्थ के प्रति अंतर से श्रद्धा होना
इसका ही नाम है सम्यग्दर्शन ।

तत्त्व ९ है -

(१) **जीव** - आत्मा (२) **अजीव** - पुद्‌गल आदि जड वस्तु
(३) **पुण्य** - शुभ कर्म (४) **पाप** - अशुभ कर्म
(५) **आश्रव** - कर्म - आगमन (६) **संवर** - कर्मनिरोध
(७) **निर्जरा** - कर्मक्षय (८) **बंध** - कर्म-आत्म एकीकरण
(९) **मोक्ष** - सर्वकर्मक्षय

जिसे इन नव तत्त्व के प्रति श्रद्धा होती है
उसमें सम्यग्दर्शन होता है ।
नवतत्त्व प्रकरण में कहै है -

जीवाइ नवपयत्थे जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं ।
भावेण सद्दहंतो अयाणमाणे वि सम्मत्तं ।।

जो जीव आदि नव पदार्थो को जानता है,
उसमें सम्यकत्व होता है
यदि कोइ जानता भी नहीं,
फिर भी यदि उसे भाव से श्रद्धा है
कि जैसा जिनेश्वरोंने तत्त्व कहा है वह निःशंक सत्य है,
तो उसमें भी सम्यक्त्व होता है ।
मोक्ष के लिये प्रभुने जितनी भी आराधनायें बतायी है,
उन सभी आराधनाओं का मूल है श्रद्धा ।
जीव को सांसारिक पदार्थो में दृढ श्रद्धा है ।
संपत्ति में दृढ श्रद्धा हे कि वह मेरा आनन्द का स्रोत है,
ऐसी दृढ श्रद्धा यदि धर्म के प्रति जग जाये,
कि सुख का रास्ता धर्म के अतिरिक्त कोई हो ही नहीं सकता,
तो धर्मपुरुषार्थ में कोइ कमी ही नहीं रहेगी ।
इसी लिये जिनागमों में शिथिलाचारी को 'मंदश्रद्ध' कहा गया है,
जब श्रद्धा ही मंद है तो आचार मंद ही होगा न ?
अरे, उग्र आचार भी क्यों न हो ?

श्रद्धा के बिना वह भी निष्फल ही है ।
यदि बीज ही नहीं, तो फल कैसे मिलेगा ?
इसी लिये योगीराज श्री आनन्दघनजी महाराज कहते है –

शुद्ध श्रद्धान विण सर्व किरिया कही
छार पर लींपणुं तेह जाणो ।

जैसे राख पर किया गया लेप व्यर्थ होता है
उसी तरह शुद्ध श्रद्धा के बिना की गई क्रिया भी मोक्ष नहीं दे सकती।
श्रद्धा क्रिया की शान है, श्रद्धा क्रिया की जान है,
श्रद्धा क्रिया का जीवन है, श्रद्धा क्रिया का आत्मा है,
श्रद्धा नैश्चयिक क्रिया है, श्रद्धा बिन क्रिया भी अक्रिया है ।
कइ साल पहले की बात है ।
पाली में एक गुरु भगवंत का चातुर्मास था ।
एक टपाल आयी ।
जैसे ही उन्होंने पढी वे बेहोश हो गये ।
खबर ही कुछ ऐसी थी ।
मुख्य बात तो अब आती है,
वहा जो श्रावक खड़े थे वे चौक गये, घबरा गये,
वे पुकारने लगे – गुरु महाराज ! साहबजी !
धीरे धीरे गुरु भगवंत को होश आया, पर पूर्णतया नहीं,
थोडी बेहोशी में ही उन्होंने पहले मुहपत्ति ली
अपने होठों के पास रखी और बोले

"घबराओ मत, मैं ठीक हूँ ।"

वे बेहोशी में भी होश में थे,
हम होश में भी बेहोश होते है ।
आप कहेंगे, उन के पास शुद्ध आचार था,
ज्ञानी कहेंगे, उनके पास शुद्ध श्रद्धा थी,
वास्तव में बात तो एक ही है ।

याद आता है परम पावन श्री आचारांग सूत्र –

जं सम्मं ति पासहा तं मोणं ति पासहा ।

जो श्रद्धा है वही आचार है ।
शुद्ध श्रद्धा और शुद्ध आचार अलग कैसे हो सकते है ?
यदि आप में शुद्ध श्रद्धा आ गयी,
तो आप शुद्ध आचार क्यों नहीं पालेंगे ?
जब हमारा पाली में चातुर्मास था
तब उसी श्रावक ने हमें यह वंदनीय घटना सुनायी थी ।
उस श्रावक का नाम था पारसमलजी भणसाली
और उन गुरु भगवंत का नाम था
पूजनीय आचार्य श्री कैलाससागर सूरीश्वरजी महाराजा ।
आपने कभी उनकी तसवीर देखी होगी ।
उनका मस्तक थोडा झुका हुआ दिखाई देगा ।
यह उनकी कड़ी इर्यासमिति का परिचय था ।
नीचे देखकर ही चलना – इस नियम से
उनका मस्तक इसी मुद्रा में स्थित हो गया था ।
बात है शुद्ध श्रद्धा की ।
शास्त्रकार भगवंत कहते है –
जा दव्वे होइ मई, अहवा तरुणीसु रूववंतीसु ।
सा चे जिणवरमए, करयलगया तया सिद्धी ।।
पैसों के प्रति या रूपवती युवतीओं के प्रति जो आकर्षण होता है
वैसा ही आकर्षण यदि जिनशासन के प्रति हो जाये,
तो समज लो कि मोक्ष तुम्हारे हाथ में ही है ।
जिनशासन के प्रति अंतर-मन से श्रद्धा जगाओ,
शुद्ध श्रद्धा जगाओ,
यदि आप इतना कर पाओ,
तो समज लो कि आप का कल्याण हो गया ।

❊ सम्यक् चारित्र ❊

समवसरण में बारह पर्षदायें भरी हुइ थी ।
अभी भी आकाश में से लाखो देव उतर रहे थे
तो आस पास की धरती से लाखो लोग आ रहे थे,
प्रभु बात कर रहे थे चारित्र की ।
''अठारह पापस्थानकों का कतलखाना यानि संसार...
द्रव्य और भाव हत्यायें यानि संसार...
दुःखों और दर्दो का समंदर यानि संसार..
कषायों का भयानक दावानल यानि संसार...
यदि हम में थोड़ी भी समजदारी है,
तो एक पल के लिये भी इस संसार में नहीं रहना चाहिये ।
यह भव संसार की गटर में व्यर्थ गवाने के लिये नहीं है,
यह भव है चारित्र की साधना करने के लिये,
यह भव है शुद्ध संयम की आराधना करने के लिये,
यह भव है कर्मों के बंधनो को तोडने के लिये ।
यह भव है चोराशी लाख के चक्करों से मुक्त होने के लिये ।
और यह सब चारित्र से ही हो सकता है ।

एगदिवसं पि जीवो पवज्जमुवागओ अणण्णमणो ।
जइ वि ण पावइ मोक्खं अवस्स वेमाणिओ होइ ।।

केवल एक ही दिन का संयम पालन हो,
पर एकाग्र मन से हो, और आयु समाप्त हो जाये,
तो इतने संयम पालन से भी मोक्ष मिल सकता है,
यदि मोक्ष न मिले तो भी वैमानिक देवलोक तो अवश्य मिलता है ।

इह सुहफल जायइ चरणं इत्थेव तग्गयमणाणं ।
परलोयफलाइं पुणो सुर नरवरसिद्धिसुक्खाइं ।।

जिसका मन संयम में ही तन्मय है,

ऐसे संयमी को तो इस भव में ही शुभ फल मिलता है ।
और परलोक में देवेन्द्र, राजा इत्यादि सद्गति के साथ
क्रमशः मुक्ति पद की प्राप्ति होती है ।''
सारी की सारी पर्षदा विस्मित होकर
प्रभु कीं वाणी सुन रही है,
बस, ऐसा लगता है कि सुनते ही जाये,
मानों अमृत की बौंछार हो रही हो,
मानों माधुर्य की चरम सीमा बरस रही हो,
मानों रोए रोए में शीतलता बस रही हो,
अद्भुत... सचमुच अद्भुत...
इसी माहोल में एक जिज्ञासु खड़ा होता है,
प्रभु से प्रश्न करता है,
''प्रभु ! चारित्र का वास्तविक अर्थ क्याँ है ?''
जिज्ञासु के मुख पर संयम की जिज्ञासा का
मानों साम्राज्य छाया हुआ है,
उसकी आँखों में उत्कण्ठा है,
उसके हाथों में अंजलिबद्धता है,
उसके अंतर में अहोभाव है,
सारी पर्षदा की दृष्टि का वह केन्द्र बना है,
सभी के मन में यही उत्सुकता है,
कि प्रभु क्याँ जवाब देंगे ?
और सर्वज्ञ परमात्मा के होठ खुलते है ।
उनका मधुर और गंभीर ध्वनि गुँज उठता है...
''चयरित्तकरं चरित्तं ।
जो आप को खाली कर दे वह चारित्र ।
मानव दुगुना बोजा लेकर
पूरी जिंदगी घूमता रहता है ।

एक – घर, परिवार, रिश्तेदार, पैसा, धंधा आदि का बाहरी बोजा
दुसरा – क्रोध, मान, माया, लोभ, काम, मत्सर आदि
दोषों का भीतरी बोजा,
इन दोनों बोजों से मुक्त हो जाना – खाली हो जाना
– इसी का नाम चारित्र ।''
जिज्ञासु ने दुसरा प्रश्न पूछा – ''चारित्र से क्याँ फायदा ?''
प्रभुने कहा – ''इससे एक तीसरा बोजा दूर हो जाता है,
वह है कर्मों का बोजा ।
अनादिकाल से आत्मा के प्रदेश प्रदेश पर लादा हुआ,
यह बोजा हटता जायें क्रमशः नाबूद हो जायें
और आत्मा सर्व कर्मों का क्षय करके मुक्ति पद पाये
यही चारित्र का फल है ।''
अनाचार एवं दुराचार की बदबू से व्याप्त वर्तमानकाल के
इस विश्व को किसी का शरण हितकर हो
तो वह एक ही व्यक्ति है चारित्र ।
दुनिया इसी लिये दुःखी है
कि वह चारित्र से उल्टी दिशा में दौड रही है ।
कहां असंयम के क्षेत्र में पशुवृत्ति तक उतर आया मानव !
और कहां अपनी संसारी श्राविका भी आये
तो भी दीवार की और मुह रखकर
उल्टे बैठकर बात करते हुए
पूज्य कैलाससागरसूरिजी महाराजा !
कहा अनावश्यक शोपिंग में पागल दुनिया
और कहा पहने हुए वस्त्रो के सिवां बिलकुल अपरिग्रही
पूज्य प्रेमसूरिजी महाराजा !
कहा बहिर्भावों के कीचड़ में फसी हुइ जनता
और कहा निरन्तर आगमसंशोधनमग्न

पूज्य सागरानन्दसूरिजी महाराजा
कहा स्वार्थमात्र में परायण दुनिया
और कहा संघसुरक्षा न हो तब पाकिस्तान में स्थिरता करनेवाले
पूज्य वल्लभसूरिजी महाराजा
कहा अर्थ और काम के ध्यान में तीव्र कर्मबंध कर रही दुनिया !
और कहा प्रभु के पावन ध्यान में घण्टो तक मग्न
पूज्य कलापूर्णसूरिजी महाराजा !
कहा विकथा में व्यर्थ समय गँवानेवाली जनता
और कहा अद्भुत ग्रन्थो के सृजन करनेवाले
पूज्य बुद्धिसागरसूरिजी महाराजा !
कहा तकलीफ आते ही आराधना छोड देने वाली दुनिया
और कहा आँख की तकलीफ आने पर
कौमुदी व्याकरण न हो तब तक ६ विगइ त्याग करनेवाले
पूज्य नेमिसूरिजी महाराजा !
कहा किताब से ३६ वा चन्द्रमा रखनेवाली दुनिया
और कहा वरिष्ठ वय में भी दिन-रात स्वाध्यायमग्न
पूज्य रामसूरिजी महाराजा !
आज भी भगवान महावीरस्वामीजी
हमे पूर्ण वात्सल्य भाव से यही कह रहे है,
वत्स !
तूँ चारित्र में आ जा,
जो मजा, जो आनन्द, जो हल्कापन चारित्र में है,
वो और कही भी नहीं,
आखिर कब तक तूँ इन तीन बोजों को उठा कर भटकता रहेगा ?
छोड दे इन बोजों को, पा ले चारित्र,
सुखी होने के लिये इससे अतिरिक्त
और कोइ उपाय नहीं है ।

❊ तपःसमाधि ❊

‘‘गुरुदेव !
मेरी भावना है, इस चोमासे में ५१ उपवास करने की ।’’
‘‘बहुत अच्छा वत्स !
पर मेरी इच्छा है कि तूँ एकासना करे और पढ़े ।
में तुजे बड़ा ज्ञानी बनाना चाहता हूँ ।
यदि तूँ उग्र तपस्या करेगा
तो तूँ पढ़ नहीं पायेगा ।’’
‘‘जैसी आप की इच्छा गुरुदेव !
मैं प्रतिदिन एकासना करुंगा और खूब पढुँगा ।’’
चौमासा पूरा होने आया ।
गुरुदेव के पास एक महात्मा बैठे थे,
बात चल रही थी ।
महात्माने कहा, ‘‘उन मुनि भगवंत की भावना तो थी
कि ५१ उपवास करने है, पर नहीं हुए ।’’
गुरुदेव मुस्कुराये, और बोले
‘‘हुए है ।’’
महात्मा चकित हो गये,
‘‘कैसे ? वे तो रोज हमारे साथ ही एकासना करते है ।’’
गुरुदेव ने कहा,

‘‘यदि उन्होंने ५१ उपवास किये होते,
तो ५१ उपवास नहीं होते,
उन्होंने ५१ उपवास नहीं किये
अतः उनके ५१ उपवास हो गये ।’’

महात्मा आँखे फाडकर देख रहे है,
उनको कुछ भी पल्ले नहीं पड़ रहा है,

उनका सारा अस्तित्व प्रश्न बन गया है,
गुरुदेव फिरसे मुस्कुराते है और कहते है-
केवल भूखा रहना यही तप नहीं है,
अध्यात्मसार में कहा है -

बुभुक्षा देहकार्श्यं वा तपसो नास्ति लक्षणम् ।
तितिक्षा ब्रह्मगुप्त्यादि - स्थानं ज्ञानं तु तद्वपुः ।

केवल भुखे ही रहना और शरीर को पतला करना
यही तप का लक्षण नहीं है,
आप सहनशील बने,
ब्रह्मचर्य का ९ गुप्तिपूर्वक विशुद्ध पालन करे
विशिष्ट जिनपूजादि आराधना करे
कषायों का त्याग करे, जिनाज्ञा का शुद्ध पालन करे,
स्वाध्याय में निरन्तर मग्न हो
एवं इस के साथ यथाशक्ति उपवास/आयंबिल/एकाशनादि करे,
यह है तप का स्वरूप ।
मरणविभक्ति आगम में कहा है -

जे पयणुभत्तपाणा सुअहेऊ ते तवस्सिणो समए ।
जो उ तवो सुयहीणो वाहिसमो सो छुहाहारो ।।

आपका भोजन-पानी कम होने के साथ साथ
यदि आपका श्रुतज्ञान बढता जाता है
तो आप तपस्वी है
ऐसा जिनशासन कहता है ।
जिस तप में बिलकुल श्रुतज्ञान नहीं है,
वह केवल व्याधि है, मानों कि एक रोग है,
जहा न खाना है न ही सम्यक् ज्ञानाभ्यास है,
वहा केवल भुखा रहना है ।
हमारे पास तप है तपसमाधि नहीं है,

भगवान कहते है,
जहा तपसमाधि है वही सच्चा तप है,
याद आता है परम पावन श्री दशवैकालिक आगम –

विविहगुणतवोरए य णिच्चं, भवइ णिरासए णिज्जरट्ठीए ।
तवसा धुणइ पुराण पावगं, जुत्तो सया तवसमाहिए ।।

जिसका तप स्वाध्यायादि विविध गुणों से शोभायमान है,
जो हमेशा निःस्पृह भाव से
कर्मक्षय के लिये ही तप करता है,
वह तप से पूर्वसंचित पापों को धो डालता है,
यतः वही तपसमाधि से युक्त होता है ।''
महात्मा मन्त्रमुग्ध बनकर सुन रहे है,
और गुरुदेव आगे कहते है –
क्यां आपने अट्ठाइ में शांतसुधारस का स्वाध्याय किया ?
क्यां आपके अट्ठम में आपने पंचसूत्र का अभ्यास किया ?
क्यां आपका मासखमण आपको तत्त्वार्थ और
प्रशमरति का ज्ञान दे सका ?
क्यां वर्षीतप के साथ आपने
श्राद्धविधि, श्राद्धगुणविवरण, श्राद्धदिनकृत्य
और उपदेशमाला की ज्ञानयात्रा पूरी नहीं की ?
क्यां आपने तप के साथ
कोइ भी विशिष्ट स्वाध्याय नहीं किया,
तो आप तप को समजे ही नहीं ।
संघ के लिये मेरी ये संवेदनायें है,
जिनका मूल है स्वयं जिनागम –

बारसविहम्मि वि तवे, संब्भिंतर बाहिरे कुसलदिट्ठे ।
ण वि अत्थि ण वि होही, सज्झायसमं तवोकम्मं ।।

प्रभु ने बताये हुए – बाह्य–अभ्यंतर

१२ प्रकार के तप मे
स्वाध्याय समान तप न तो हुआ है, न ही होगा ।
खाते रहना यह भी तप नहीं है,
भुखे ही रहना यह भी तप नहीं है,
किन्तु यथाशक्ति उपवासादि करके
विशुद्ध स्वाध्यायादि आराधना करनी,
यह तप है ।

बाह्यं तपः परम दुश्चरमाचरध्व–
माध्यात्मिकस्य तपसः परिबृंहणाय ।

बाह्य तप कर्तव्य ही है, आपकी शक्ति हो तो
कडे से कडा बाह्य तप करे
पर किस लिये
आभ्यन्तर तप की पुष्टि के लिये ।
स्वाध्यायादि की वृद्धि के लिये ।
पूज्य सिद्धिसूरिजी महाराजाने १०५ वर्ष की आयु में
अंतिम श्वास तक अखंड वर्षीतप किये,
पर स्वाध्यायादि अद्भुत आराधना के साथ ।
पूज्य राजतिलकसूरिजी महाराजाने १०० + १०० + ८९ ओली की,
कुल १४,३९४ आयंबिल, उसमें भी ६८४८ आयंबिल में
ठाम चोवियार किया यानि आयंबिल के समय के अलावा
बिलकुल पानी नहीं लिया,
और उस तप के साथ उन्होंने स्वाध्यायादि निर्मल आराधना भी की,
पूज्य कैलाससागरसूरिजी महाराजाने अपने संयमजीवन में
४४ वर्ष तक प्रायः एकासना किया,
वे नियमित रूप से ४ विगइ का त्याग करते ।
मिष्टान्न उनको सदंतर बंद था ।
वे उसका स्वाद तक भूल गये थे ।

और इस तप-त्याग के साथ उन्होंने निजी आराधना
और शासनप्रभावना दोनों में कीर्तिमान बनाये थे ।
बस, भगवान हमे यही प्रेरणा देते है,
अपने तप को निश्चय और व्यवहार का समन्वय बनाओ,
वह तप आपको हर गुणों का समंदर बना देगा ।'
महात्मा गद्गद्भाव से सुन रहे है,
गुरुदेव अब उस मुनि भगवंत की बात कर रहे है -
उन मुनिजी ने जो शास्त्राभ्यास किया
वह मेरे लिये ५१ उपवास ही है ।
उससे भी बडी बात तो यह है,
कि उन्होंने अपनी इच्छा का मेरी आज्ञा से निरोध किया ।
यही तो परम तप है,
इच्छानिरोधे संवरी । मुजे तो संघ से भी कहना है ।
अपनी इच्छा से मासखमण करना
और गुरु की इच्छा से आयंबिल करना,
इन दोनों में दुसरा तप श्रेष्ठ है,
सच कहे तो दुसरा ही तप है,
यतः वहा इच्छानिरोध है ।
जहा गुरु की आज्ञा है, वही शुद्ध आराधना है ।
आपकी इच्छा है प्रभु की सोने की प्रतिमा भराने की ।
गुरुकी इच्छा है विशिष्ट ज्ञानाभ्यास करने वालों को
सोने की अंगूठी का पुरस्कार दिलवाने की,
तो वह पुरस्कार देना यह भी परम तप है ।
आपकी इच्छा है संघयात्रा निकालने की
और गुरु की इच्छा है बच्चों की ज्ञानशिबिर कराने की
तो वह शिबिर करना यह भी परम तप है ।
आपकी इच्छा है नया तीर्थ बनवाने की

गुरु की इच्छा है जैन एज्युकेशन स्कुल बनवाने की
तो वह स्कुल बनानी यह भी परम तप है ।
हम पैसा छोड़ सकते है,
हम खाना छोड़ सकते है,
हम इच्छा नही छोड सकते है,
न हम गुरु को पूछ सकते है,
न ही हम गुरु का मान सकते है,
तो हम कितने भी उपवास कर ले,
हम तपस्वी नहीं है ।
आज्ञा हि परमं तपः ।
श्रेष्ठ तप तो गुरु की आज्ञा का पालन ही है ।
वह तो इन मुनि भगवंतने किया ही..
उन्होंने कुछ नही गवाया... बल्कि बहुत कुछ पाया..."
गुरुदेव मौन बने है,
महात्माने मस्तक झुका दिया है,
और उनके अश्रु
गुरुदेव का चरणाभिषेक बन रहे है ।

परम तारक परम श्रद्धेय श्री जिनाज्ञाविरुद्ध
कहा हो तो मिच्छामि दुक्कडम्

भादरवा सुद १५, वि. २०७६,
श्री आंबावाडी जैन संघ,
अमदावाद

✺